प्रवचन-३८, श्लोक-५६, गाथा-४०, बुधवार, श्रावण शुक्ला ३, दिनांक १३-०८-१९८०

नियमसार ४०वीं गाथा के बाद कलश है। एक कलश में आयेगा। किसी का लेख है कि यह नहीं पढ़ना, जानने की चीज़ है। यह कलश में आयेगा। देखो! कलश है न?

(मालिनी)

''न हि विदधति बद्धस्पृष्टभावदयोऽमी
स्फुटमुपरि तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्।
अनुभवतु तमेव द्योतमानं समन्तात्
जगदपगतमोहीभूय सम्यक्स्वभावम्॥''

यह अबद्धस्पृष्ट की बात चलती थी न? पश्चात् १४वीं गाथा पढ़ना। किसी ने कहा था कि १४, ३८, ७३ पढ़ना। यह १४ का सार आ गया। यह कलश १४वीं का है?

जगत... अर्थात् जगत में रहनेवाले जीवों। जगत शब्द है। जगत में रहनेवाले जीवों, ऐसा अर्थ है। संसार में भी ऐसा कहते हैं न कि लोग आये हों तो मालवदेश आया, काठियावाड़ आया। काठियावाड़ आता है? मालवदेश आता है? वहाँ के रहनेवाले आते हैं। इसी प्रकार यहाँ जगत कहने से जगत में रहनेवाले जीवों को सम्बोधित करते हैं। समझ में आया?

मोहरहित होकर सर्व ओर से प्रकाशमान... आहाहा! समयसार में ऐसा आया है कि जब तक अज्ञानी है, तब तक जैन हो तो भी पुण्य-पाप का कर्ता है, ऐसा मानना। अन्यमती की भाँति नहीं मानना। समयसार में पीछे यह श्लोक है। पुण्य और पाप का भाव, जब तक स्वरूप का भान नहीं, तब तक अज्ञान से अज्ञानी कर्ता होता है। कर्म से विकार होता है, ऐसा नहीं है। समझ में आया? पहला श्लोक है कि जब तक अरिहंत को माननेवाले अन्यमती की भाँति मानते हैं कि विकार अपना है ही नहीं और अपने से हुआ ही नहीं, ऐसा न मानो। जब तक अज्ञान है, तब तक राग-द्वेष का कर्ता आत्मा है। पर्याय में अशुद्धता का (कर्ता है)। अज्ञानी, मिथ्यात्व जब तक है.. आहाहा! स्वरूप शुद्ध

चैतन्यघन आनन्द का अनुभव नहीं, तब तक जैन लोग भी अरिहन्त को माननेवाले, राग-द्वेष का कर्ता अशुद्धता की पर्याय मेरी है, मैं कर्ता हूँ, (ऐसा मानो)। सूक्ष्म बात है, भगवान। आहाहा! भेदज्ञान होने के बाद राग-द्वेष का कर्ता मैं नहीं, तो राग-द्वेष का कर्ता कर्म है, ऐसा भी नहीं। राग-द्वेष होता है तो अपनी पर्याय में अपनी कमजोरी से, परन्तु जब स्वरूप का ज्ञान हुआ कि मैं तो ज्ञानानन्द सच्चिदानन्द प्रभु हूँ, तो ऐसी दृष्टि में राग आता है तो राग का जाननेवाला रहता है। आहाहा! समझ में आया? यह श्लोक है। भेदज्ञान होने के पहले, अरिहन्त को माननेवाले राग-द्वेष, पुण्य-पाप का कर्ता आत्मा है, ऐसा मानो।

यहाँ तो वास्तविक दृष्टि का विषय जहाँ बताना है। क्रमबद्ध में भी यह बताना है—अकर्ता। वह अकर्ता कब? कि राग की एकता टूटकर सम्यग्दर्शन हुआ, तब राग का कर्ता आत्मा नहीं। परन्तु अज्ञान में भी राग का कर्ता आत्मा नहीं और कर्म राग का कर्ता है, ऐसा है नहीं। समझ में आया? घड़ीक में कर्ता, घड़ीक में अकर्ता। भगवान का स्याद्वाद मार्ग है। पर्याय में पुण्य-पाप के मलिनभाव होते हैं तो जब तक भेदज्ञान नहीं.. ऐसा समयसार में श्लोक है, तब तक अरिहन्त को माननेवाले की पर्याय का विकार होता है शुभ, दया, दान, काम, क्रोध—वह पर्याय का अपराध है और मैं ही कर्ता हूँ, ऐसा मानना। समझ में आया? और भेदज्ञान होने के बाद.. यह अभेदज्ञान की बात है। आहाहा!

जगत को मोहरहित होकर... ऐसा शब्द पड़ा है न? यह पुण्य-पाप का भाव विकृत भाव है। वह पर्यायबुद्धि में मैं कर्ता था, परन्तु मेरी चीज़ जो है, वह आनन्द का नाथ प्रभु है, उसकी दृष्टि होकर सम्यग्ज्ञान हुआ तो उस राग का मैं कर्ता नहीं, मैं मोहरहित हूँ। आहाहा! समझ में आया? **मोहरहित होकर...** इसका अर्थ कि पहले मोहसहित था। समझ में आया? आहाहा! वीतरागमार्ग अलौकिक है, भाई! **मोहरहित होकर...** इसका अर्थ कि पहले मोहसहित था। ऐसा मानता था और ऐसा था। आहाहा! बिल्कुल मुझमें राग नहीं और अज्ञानभाव में राग का कर्ता कर्म है, ऐसा मत मानो। समयसार में ऐसा कलश है। डाह्याभाई! आहाहा! अभी तक यह बात की और अब यह बात! ऐसी बात है, प्रभु! स्वच्छन्द न हो जाए कि हम तो सम्यग्दृष्टि हैं, फिर हमारे चाहे जैसा विकार हो, वह तो हमारा नहीं; हम भोग करते हैं, वह भी हमारा नहीं, ऐसा स्वच्छन्द न हो जाए। आहाहा! जब तक जैन में रहा, जैन के पक्ष में आया, जैन वाड़ा में आया, जैन का सुना, परन्तु जब तक राग से भिन्न अपनी चीज़ जानने में न आवे, तब तक तो जैन और अज्ञानभाव से रागभाव

का कर्ता मैं हूँ, ऐसा मानो, ऐसा आचार्यदेव का हुकम है। आहाहा! डाह्याभाई!

परन्तु जब मोहरहित दृष्टि हुई.. आहाहा! कि विकार का जो दया, दान का विकल्प, उससे भी मेरी चीज़ तो भिन्न है। ऐसी चीज़ वाले को-जगत के प्राणी को सम्बोधन करते हुए आचार्यदेव कहते हैं कि **मोहरहित होकर सर्व ओर से प्रकाशमान...** ऐसा भगवान अन्दर चैतन्यमूर्ति राग से भिन्न होकर, मोह से रहित होकर... आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! प्रभु का मार्ग (ऐसा है)।

कोई ऐसा प्रश्न करे कि भाई! इसमें त्याग का क्या? त्याग तो आता नहीं। ऐसा प्रश्न अजमेर से आया था। प्रभु! पर का ग्रहण-त्याग तो आत्मा में है ही नहीं। आत्मा का स्वभाव ही त्याग-ग्रहणरहित है। आहाहा! यह सैंतालीस शक्ति में है। प्रभु! पर के त्याग और पर के ग्रहण से तो प्रभु शून्य है। मात्र अज्ञानभाव से मैं राग-द्वेष का कर्ता हूँ, ऐसा ग्रहण किया, वह अज्ञानभाव से है। पर का त्याग-ग्रहण तो है ही नहीं और मिथ्यात्व का त्याग, वह भी निमित्त से कथन है। अपनी चीज़ जो मोहरहित है... आहाहा! ऐसा अनुभव करो।

जो प्रकाशमान, उस सम्यक्स्वभाव का अनुभव करना चाहिए। आहाहा! उस राग की रुचि छोड़कर, राग की एकताबुद्धि छोड़कर मोहरहित अर्थात् रागरहित मेरी चीज़ है, ऐसी दृष्टि करके, हे जगत के प्राणियों! सन्त, दिगम्बर सन्त पुकार करके, करुणा करके जगत को कहते हैं। आहाहा! यह भगवान अन्दर चैतन्य प्रकाशमूर्ति, ऐसा इस सम्यक्स्वभाव का.. सम्यक्स्वभाव, रागादि, पुण्यादि इसका मूल स्वभाव नहीं है, यह तो उपाधि है। जब तक राग का कर्ता होता है, तब तक तो अज्ञानी है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो कहते हैं, कि एक बार प्रभु! तू मोहरहित हो जा। आहाहा! तेरी चीज़ में यह राग और विकल्प है ही नहीं। (गाथा) ४० में यह कहना था। उसका सार यहाँ कलश में कहा। (समयसार की) १४वीं गाथा का आधार दिया कि अनुभव करना चाहिए। क्या?

जिसमें यह बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव... आहाहा! क्या कहते हैं? यह १४वीं गाथा का सार है कि कर्म का सम्बन्ध मुझमें है, उससे मैं रहित हूँ। बद्ध से रहित हूँ। आहाहा! और स्पृष्ट अर्थात् विस्रसा पुद्गल जो है, उसके स्पर्श से रहित मैं हूँ। बद्धस्पृष्टरहित। आहाहा! और अनन्य। नरकगति, मनुष्यगति, देवगति आदि मैं नहीं। वे अन्य-अन्य है, मैं अनन्य हूँ। उन चार गति से भिन्न मैं अनन्य हूँ। आहाहा! अबद्धस्पृष्ट, अनन्य, नियदम्।

पर्याय में अनेक प्रकार की हीनाधिकता की दशा उत्पन्न होती है, वह अनियत है। मैं तो नियत हूँ। आहाहा! मैं तो निश्चयस्वरूप भगवान पूर्णानन्द में कोई घट-बढ़ नहीं होती और पर्याय में आना और जाना, वह मेरी चीज़ में नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। है?

जिसमें बद्धस्पृष्ट। बद्धस्पृष्ट तो नहीं, अन्य-अन्य गति, वह भी मैं नहीं और अनियत अर्थात् पर्याय में हीनाधिकता होती है, वह भी मैं नहीं और दर्शन-ज्ञान और चारित्र जो विशेष दिखता है, वह विशेष भी मैं नहीं। मैं तो सामान्य एकरूप चैतन्य हूँ। आहाहा! ४० गाथा में यह कहना है। उसका सार यह है। आहाहा! समझ में आया? मैं बद्धस्पृष्ट अन्य और अनियत.. आहाहा! यह नहीं, नियत हूँ। निश्चय मेरी वस्तु एकरूप है और अविशेष-मैं अविशेष हूँ। विशेष नहीं। क्या? दर्शन, ज्ञान और चारित्र ऐसे भेद भी मेरी चीज़ में नहीं। आहाहा! मैं तो विशेषरहित सामान्य हूँ। रागरहित तो हूँ परन्तु विशेषरहित मैं हूँ। आहाहा! प्रभु! मार्ग अलग, भाई! इस दुनिया में पैसे में घुस जाता है और मजा मानता है। ...नहीं सूझता। बैंगलोर, दो करोड़ रुपये, धूल-धूल। आहाहा!

मुमुक्षु : चार कोने में...

पूज्य गुरुदेवश्री : चार कोने में यह कह सके, बाहर नहीं। आहाहा!

यहाँ तो परमात्मा जिनेश्वरदेव ने कहा, वैसा दिगम्बर सन्त आड़तिया होकर जगत को भगवान का माल बताते हैं। पसन्द आये तो लो, न पसन्द आये तो तुम्हारी मर्जी। आहाहा! कहते हैं कि मैं विशेष भी नहीं। राग का सम्बन्ध तो नहीं, कर्म का सम्बन्ध तो नहीं... आहाहा! यह बद्धस्पृष्ट में आता है। यह व्याख्या बद्धस्पृष्ट की है। है?

बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,... आहाहा! ये विशेष भाव और कर्म का सम्बन्ध भाव और असंयुक्त। राग से असंयुक्त - सहित नहीं। राग से संयुक्तपना (नहीं)। यह राग, दया, दान, व्रतादि का विकल्प ऊपर तैरता है। मेरी चीज़ में उनका प्रवेश नहीं। आहाहा! समझ में आया? ये पाँच भाव आये। बद्धस्पृष्टरहित, अनन्य अर्थात् गति अन्य-अन्य होती है, उससे रहित और पर्याय में अनेकता-विविधता-हीनाधिकता होती है, वह भी नहीं; और विशेष दर्शन, ज्ञान, चारित्र के भेद भी मैं नहीं और असंयुक्त—राग से संयुक्त भी नहीं। आहाहा! ऐसे ये पाँच **बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव उत्पन्न होकर स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,...** आहाहा! यह मार्ग।

४०वीं गाथा में यह क्यों डाला ? समझ में आया ? यह ऊपर तैरते हैं, मेरी चीज़ में नहीं।

जैसे पानी है न, पानी ? मण-दो मण पानी, उसमें तेल-तेल डालो तो तेल अन्दर प्रवेश नहीं करता। तेल की चिकनाहट। तेल समझते हो न ? वह चिकनाहट ऊपर रहती है, अन्दर प्रवेश नहीं करती। जल का दल है-पानी का दल है... आहाहा! उसमें तेल की बूँद ऊपर तैरती है, अन्तर में प्रवेश नहीं करती।

इसी प्रकार यहाँ कहते हैं कि हे जगत के जीवो! प्रभु! तेरा स्वभाव अन्दर ऐसा है। वे बद्धस्पृष्ट रागादि भाव ऊपर तैरते हैं, अन्दर द्रव्य में प्रवेश नहीं करते। आहाहा! समझ में आया ? आहाहा! कहो, अब ऐसी बात! अभी तो यह शुद्धनय के विषय की बात है। १४वीं गाथा शुद्धनय के विषय की अर्थात् सम्यग्दर्शन की बात है। १५वीं गाथा में सम्यग्ज्ञान की बात है। यहाँ सम्यग्दर्शन की बात है। तथापि सम्यग्दर्शन में भी शुद्धनय का यह विषय लिया है। नय तो ज्ञान है। वह शुद्धनय जो पवित्र दृष्टि पर्याय, उसका यह विषय है। आहाहा! धीरे-धीरे अब तो पढ़ना पढ़ेगा न इसे ? आहाहा! बापू! कहाँ से आये हैं ? देखो, कहाँ-कहाँ से आये हैं ? अपनी सुविधा छोड़कर। वहाँ के जैसी सुविधा यहाँ नहीं मिलती। परन्तु क्या चीज़ है, प्रभु! आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि एक राग-द्वेष, कर्म, पर्याय की अनेकता, गति की अनेकता, भेद का विशेष भाव और रागभाव, ये आत्मद्रव्य के ऊपर तैरते हैं; द्रव्य में प्रवेश नहीं करते। आहाहा! यह १४वीं गाथा। है नय का अधिकार, परन्तु यह दर्शन का अधिकार है। १५वीं गाथा में ज्ञान का अधिकार है कि बद्धस्पृष्टरहित अपने आत्मा को अनुभव करता है, वह पूरे जैनशासन का अनुभव हुआ। जैनशासन में यह कहना है। '**अपदेससंतमज्झं पस्सदि जिणसासणं सव्वं**' जिसमें भगवान आत्मा में... आहाहा! जिसने विशेष और राग-द्वेष से रहित भिन्न आत्मा देखा और अनुभव हुआ, वह '**अपदेससंतमज्झं**' सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है और अनुभव, वह जैनशासन है। यह देखनेवाले ने पूरा जैनशासन देखा। आहाहा!

इस गाथा के अर्थ में... गाथा है न ? उसका कलश है। उसके अर्थ में और भावार्थ में तो ऐसा लिया है। भाई! यह अबद्धस्पृष्ट ऐसा कहा, परन्तु पर्याय में मलिनता है, पर्याय में राग है, ऐसा ज्ञान लक्ष्य में रखकर अबद्धस्पृष्ट की दृष्टि करना। टीका में है। समयसार की १४वीं गाथा में पण्डित जयचन्दजी ने इस टीका का अर्थ लिखा है। आहाहा! पर्याय

में राग-द्वेष है, ऐसा ज्ञान तो लक्ष्य में रखना। बिल्कुल ज्ञान का लक्ष्य छोड़ दे तो एकान्त हो जाएगा। यह ज्ञान के लक्ष्य में रखकर उनसेरहित मैं चैतन्य हूँ, ऐसा दृष्टि का विषय बना ले। तेरे भव का अन्त हो जाएगा। आहाहा! यह नरक और निगोद, भाई! आहाहा!

वादिराज तो कहते हैं, वादिराज का बनाया हुआ एकीभाव स्तोत्र है न? स्तुति। उस स्तुति में कहते हैं कि हे नाथ! मैं विगत काल के दुःख याद करता हूँ तो मुझे आयुध की चोट लगती हो, ऐसा लगता है, मुनि कहते हैं। मेरी पूर्व की नरक और निगोद की पर्याय में दुःख (भोगे), उन दुःखों को मैं याद करता हूँ। मुनिराज कहते हैं। एकीभाव में भगवान की स्तुति करते हैं। हे नाथ! आपने कहा, ऐसा शरण लिया नहीं और हम दुःखी हुए। ऐसे दुःखी कि उस दुःख की स्मृति जहाँ करते हैं, नरक और निगोद के दुःख... आहाहा! अन्तर्मुहूर्त का दुःख। करोड़ भव में करोड़ जीभों से नहीं कहे जा सकते, प्रभु! ऐसी दुःखदशा है। तू भूल गया। भूल गया, इसलिए नहीं था, ऐसा कैसे कहा जाये? समझ में आया?

अपने जीवन में पहले बारह महीने में जन्मने के बाद क्या हुआ? माता ने क्या किया, यह खबर है? दस्त करते समय तो माता ने पैर लम्बे करके पैर पर बैठाकर दस्त करायी है। बालक है, उसे अब दस्त कहाँ लाना, तो पैर लम्बे करके दो पैरों के बीच बालक को बैठाते हैं। देखा है या नहीं? आहाहा! यह माँ है। इसके दस्त होने की तैयारी हो गयी। यहाँ बैठा था तो थोड़ा बिगड़ा। अब इसे दस्त कैसे करावे? वहाँ चूल्हे में बैठावे? बाहर बैठावे? कहाँ बैठावे? तो माता पैर लम्बे करके पैर पर बैठाती है। पैर के बीच खाली हो, वहाँ दस्त जाए। आहाहा! पण्डितजी! यह तो सब देखा है न, आहाहा! माता ने ऐसा किया है। प्रभु! तुझे याद नहीं है। याद नहीं, इसलिए नहीं है, ऐसा कैसे कहें? आहा..!

इसी प्रकार अनन्त भव में कितने दुःख भोगे? वे दुःख तुझे याद नहीं, इसलिए दुःख नहीं था - ऐसा कौन कहे? कपूरचन्दजी! आहाहा! ऐसी बातें हैं। ऐवी बातों छे, यह गुजराती भाषा। ऐसी बात है, यह हिन्दी भाषा।

बद्धस्पृष्टत्व आदि भाव... भाव तो कहा। कोई अभाव / शून्य है, ऐसा नहीं। रागादि, विशेषादि बद्धस्पृष्ट आदि भाव तो हैं। आहाहा! परन्तु वे स्पष्टरूप से... आहाहा! भगवान आत्मा चैतन्य प्रकाश की मूर्ति, उसके स्पष्टरूप से अर्थात् प्रत्यक्षरूप से... आहाहा! जहाँ यह ज्ञान और आनन्द का सम्यग्दर्शन में प्रतीति / अनुभव हुआ... आहाहा! वह अनुभव होकर प्रतीति हुई तो उसमें स्पष्टरूप से **ऊपर तैरते होने पर भी,...** आहाहा! अपनी चीज़

में **ऊपर तैरते होने पर भी,...** प्रत्यक्ष आत्मा को तैरते देखा। आहाहा! समझ में आया? प्रभु! यह तो धर्म कथा है। यह तीन लोक के नाथ की कथा है। यह कोई वार्ता नहीं। बालपने में कथा आती थी न, चिड़िया लायी चावल का दाना, चिड़ा लाया मूँग का दाना और फिर बनायी खिचड़ी। यह बालपने में कथा आती थी। वह खिचड़ी कुम्हार को दी, कुम्हार ने घड़ा दिया, घड़े में खजूर दिया। आहाहा! ऐसी बात नहीं है, प्रभु! यह तो सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा की बात है। आहाहा!

कहते हैं कि **बद्धस्पृष्टत्व आदि...** अर्थात् ये पाँच भाव। **स्पष्टरूप से ऊपर तैरते होने पर भी,...** आहाहा! ये दया, दान, व्रत के विकल्प भी ऊपर तैरते हैं। आहाहा! बाहर की चीज़ तो अन्तर में है ही नहीं, उसका त्याग-ग्रहण तो है ही नहीं, परन्तु रागादिभाव ऊपर तैरते हैं। आहाहा! तो द्रव्य पर जहाँ दृष्टि होती है, तो दृष्टि में उनका तो अभाव हो जाता है। आहाहा! दृष्टि में उनका अभाव हो जाता है। पर्याय में भले हों। यह ज्ञान करने में रहे, परन्तु बद्धस्पृष्ट, अन्य-अन्य आदि भाव जो हैं, उनसे रहित जो भगवान को देखा और आत्मा का-चैतन्य का अनुभव हुआ, आनन्द का स्वाद आया तो स्पष्टरूप से प्रत्यक्ष ज्ञान से आत्मा को देखा और आनन्द का भी प्रत्यक्षरूप से स्वाद आया। आहाहा!

ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते। पर्याय में ऊपर रहने पर भी उन्हें द्रव्य में आधार नहीं मिलता, प्रतिष्ठा नहीं मिलती। आहाहा! धन्नालालजी! क्या कहते हैं? दर्शन, ज्ञान और चारित्र, ऐसे भेद ऊपर तैरते हैं, उस विशेष को उस द्रव्य में आधार नहीं मिलता। आहाहा! यह ४०वीं गाथा का सार है। समझ में आया?

मुमुक्षु : दृष्टान्त तो बराबर बैठ जाता है (समझ में आ जाता है)।

पूज्य गुरुदेवश्री : दृष्टान्त, दृष्टान्त के कारण से है या दृष्टान्त, सिद्धान्त के कारण से है? आहाहा! पहले हमारे पटारा थे। पटारा समझते हो? घर में माल रखने का पटारा। पटारा को क्या कहते हैं? बड़ी सन्दूक। पहले सन्दूक रखते थे न, विवाह में भी देते थे। तो सन्दूक के ऊपर गैलरी हो, उसमें थाली होती है। ऊपर अभेरायी भरी होती है, तो बालक को ऊपर बैठावे, नीचे तो आदमी और महिला न चढ़े, इसलिए बालक को ऊपर बैठावे। बालक को ऊपर बैठावे तो बालक को वहाँ देखने के लिये बैठाते हैं या बालक को लम्बे हाथ करके थाली लेने के लिये बैठाते हैं? थाली समझते हो? ऊपर बर्तन रखते हैं न? सन्दूक होती

है, उसके ऊपर बर्तन रखते हैं। हमारे घर में यह सब था, इसलिए हमने देखा है। यहाँ तो दूसरा कहना है कि मेहमान आये हों और पाँच-दस थाली चाहिए हो, घर में दस व्यक्ति हो तो दस थाली नीचे हो। दूसरे दस मेहमान आवें तो दूसरी दस थाली ऊपर से उतारने के लिये बालक को सन्दूक पर चढ़ाते हैं। बालक को कहे, यहाँ चढ़ जा, तो बालक को वहाँ बैठने के लिये कहा है? चढ़कर वह थाली उतार ले। इसी प्रकार दृष्टान्त को दृष्टान्त तक रखना है? दृष्टान्त को सिद्धान्त की ओर ले जाना है। आहाहा! हमने तो पूरा संसार का अनुभव...

नाटक में जाते थे, ये कहा न, तो नाटक में जाते थे तो हम उनका कुछ सुनते नहीं थे। जो तुम्हारे बोलना है, वह पुस्तक लाओ। तुम क्या बोलते हो, यह समझे बिना हम नहीं बैठेंगे। बारह आने की पुस्तक, टिकिट बारह आने की, पुस्तक बारह आने की। हमने तो सब देखा है। घर की दुकान थी तो माल लेने जाते थे। छोटी उम्र की बात है, १८-१९ वर्ष की बात है, ७० वर्ष पहले की बात है। आहाहा! तुम क्या बोलते हो, वह तुम धीरे-धीरे बोलो, हजारों लोग हैं। हमें ख्याल तो आना चाहिए कि क्या बोलते हो? लाओ, पुस्तक लाओ। आहाहा!

नाटक में पहले नारद आता है। नारद आता है। नाटक की पुस्तक में ऐसा लिखा है। 'ब्रह्मा सुत हूँ, ब्रह्मा सूत नारद कहाऊँ, जहाँ जाऊँ वहाँ कलह कराऊँ'। ब्रह्मा सुत में, नारद कहाऊँ, जहाँ क्लेश न हो, वहाँ क्लेश कराऊँ। राम! मोक्ष पधारनेवाले रामचन्द्रजी महापुरुष, उनकी भी उनके पुत्र के साथ लड़ाई हुई। लव और कुश। लव और कुश वहाँ जन्मे नहीं थे। सीताजी को रावण ले गये थे। उनका जन्म दूसरी जगह हुआ था, तो लड़कों को लोगों ने कहा कि ये तुम्हारे पिताजी हैं, परन्तु पहले मुझसे जीतते हैं या नहीं? पिताजी मुझसे जीतते हैं या नहीं? पहले मैं युद्ध करूँगा। यह नारद ने कहा। हमने सब नाटक में देखा है। तब निवृत्ति थी न। आहाहा!

पश्चात् लव-कुश के साथ युद्ध करते.. करते.. करते.. रामचन्द्रजी के साथ इतना युद्ध हुआ कि पहले लव-कुश को खबर नहीं कि यह हमारे पिता हैं। पश्चात् रामचन्द्रजी-लक्ष्मणजी का पराजित होने का समय आया। अरे! यह दूसरा वासुदेव कौन पका? लक्ष्मण कहे, मैं वासुदेव हूँ। रामचन्द्रजी महापुरुष बलदेव हैं। यह कौन पका है कि हमें भी पराजित करता है? पश्चात् नारद बीच में पड़ गये। नारद ने कहा, ये तुम्हारे पुत्र हैं। हें!

तुम इनके पिता हो तो वे लड़के हथियार छोड़कर पिताजी के चरणों में गिर गये। पिताजी! हमें खबर नहीं। तुम मेरे पिताजी हो। हम तो वन में जन्में हैं। हमें खबर नहीं। पिताजी! यह युद्ध नारद ने कराया है और नारद अन्त में युद्ध में पूरा हुआ रामचन्द्रजी हार गये।

रामचन्द्रजी महापुरुष। पुरुषोत्तम पुरुष, अन्तिम शरीर, मोक्ष जानेवाले हैं। आहाहा! वासुदेव तो नरक में जानेवाले हैं। लक्ष्मण, उन्हें भी ऐसा हुआ कि कौन है यह? मेरी हार हुई और इसकी जीत! ये वासुदेव है या कौन है यह? नारद बीच में आये और कहा ये तुम्हारे पुत्र हैं। ये सीताजी के पुत्र हैं। तुम्हारे गाँव में आने से पहले ऐसी परीक्षा करके आयेंगे, तो वहाँ ऐसा लिखा था। युद्ध करना, ऐसा करना, वैसा करना।

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! एक बार.. समयसार नाटक है या नहीं? समयसार को नाटक का रूप दिया है। आहाहा! जहाँ अन्तर में आनन्द का वेश लेकर परमात्मा प्रवेश करता है.. आहाहा! मोक्ष भी एक वेश है। मोक्ष उसका कायमी स्वरूप नहीं है, वेश है, पर्याय है न? संवर-निर्जरा भी एक वेश है, स्थायी चीज़ नहीं है। आहाहा! दृष्टि का जो विषय है, उसमें स्पष्टरूप से ऊपर भिन्न तैरते हैं, उस दृष्टि के विषय में तो वे ऊपर तैरते हैं, अन्तर में नहीं। आहाहा! ऐसी दृष्टि होने पर रागादि दिखते हैं परन्तु वे मेरे नहीं। जानने में आते हैं। मेरे ज्ञान का ज्ञेय पररूप से ज्ञेय है। स्व रूप से ज्ञेय तो मैं ज्ञाता हूँ, वह स्व रूप से मेरा ज्ञेय है। आहाहा! समझ में आया? वह इस गाथा में कहा है। देखो!

ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते। द्रव्य में प्रवेश नहीं पाते। आहाहा! है? कलश में है या नहीं? सेठ! सेठ को मिला? यह तो कहीं अलग प्रकार की बात है, प्रभु! यह श्लोक, **वास्तव में स्थिति को...** स्थिति अर्थात् प्रतिष्ठा। समझ में आया? '**तरन्तोऽप्येत्य यत्र प्रतिष्ठाम्**' पाठ है। कलश के दूसरे पद का अन्तिम शब्द। प्रतिष्ठा नहीं मिलती। वे **ऊपर तैरते होने पर भी, वास्तव में स्थिति को प्राप्त नहीं होते।** अन्दर में प्रवेश नहीं कर सकते। आहाहा! पर्यायमात्र द्रव्य से ऊपर तैरती है। आहाहा! तो रागादि की बात क्या और पर-स्त्री-कुटुम्ब-परिवार मेरे, यह कहीं रह गये। प्रभु! आहाहा! द्रव्य में पर्याय प्रवेश नहीं करती, पर्याय ऊपर तैरती है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है, प्रभु!

मुमुक्षु : भाव गम्भीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव गम्भीर है। आहाहा! यह गाथा (श्लोक)।

श्लोक-५६

और (४०वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज दो श्लोक कहते हैं)—

(अनुष्टुप्)

नित्यशुद्धचिदानन्दसम्पदामाकरं परम् ।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम् ।।५६।।

(वीरछन्द)

नित्य शुद्ध जो चिदानन्दमय सम्पत्ति की खान महान।
जो अत्यंत अपद विपदा को उसका अनुभव करूँ सुजान॥५६॥

श्लोकार्थः—जो नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है तथा जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है (अर्थात्, जहाँ विपदा बिलकुल नहीं है) ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।।५६॥

श्लोक-५६ पर प्रवचन

अब स्वयं टीकाकार दो श्लोक कहते हैं।

नित्यशुद्धचिदानन्दसम्पदामाकरं परम् ।
विपदामिदमेवोच्चैरपदं चेतये पदम् ।।५६।।

जो नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है... आहाहा! भगवान आत्मा नित्य ध्रुव शुद्ध पवित्र ज्ञानानन्द-चिदानन्द ज्ञानरूपी सम्पदा। यह सम्पदा। वह धूल की सम्पदा, वह तो विपदा है। आहाहा! कहो। **चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** खान। आहाहा! भगवान आत्मा अन्दर में नित्य और शुद्ध ऐसे चिदानन्द ज्ञान और आनन्द दो मुख्य लेना है। ज्ञानानन्दरूपी **सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है...** खान में से जितना निकालो, उतना निकलेगा। वह खाली नहीं होगी। आहाहा!

भगवान आत्मा सम्यग्दर्शन का विषय सम्यक् शुद्धनय का विषय, वही आदरणीय

है। वह आदरणीय चीज़ है कैसी ? वह नित्य रहनेवाली चीज़ है। नित्य तो परमाणु भी रहते हैं। परन्तु शुद्ध है। आहाहा! भगवान आत्मा नित्य शुद्ध है। पवित्रता का पिण्ड प्रभु अन्दर है। आहाहा! **नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदा...** ज्ञानानन्दरूपी अपनी सम्पदा की **उत्कृष्ट खान है...** आहाहा!

तथा **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** रागादि पर्याय, वह अपद है, वह विपदा है। आहाहा! राग, दया, दान, व्रत, भक्ति आदि के परिणाम, वे विपदाओं का स्थान **अत्यन्तरूप से अपद है...** आहाहा! भगवान नित्यानन्द उत्कृष्ट चिदानन्दरूपी गुण की खान है, तो पुण्य और पाप है, वे **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** वह तो विपदारूप से अपद है, अपना पद नहीं। आहाहा! ऐसी बात! फिर लोग तो कहे न ? सोनगढ़वाले एकान्त है.. एकान्त है.. अरे भाई! बापू! भाई! तेरी चीज़ की महिमा की खबर नहीं तो तुझे व्यवहार दया, दान की महत्ता आती है। जिसकी महत्ता छोड़नी है, उसकी महत्ता आती है और जिसकी महत्ता करनी है, उसकी महत्ता नहीं आती। आहाहा!

जिनका अन्दर में प्रवेश नहीं है, ऐसे दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम। उन्हें तो यहाँ **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...,** (ऐसा कहते हैं)। वह तेरा स्थान नहीं, प्रभु! आहाहा! तेरा धाम नहीं। वह तेरा धाम नहीं, चैतन्य का वह धाम नहीं। वह राग की आपदाओं का धाम है। आहाहा! ऐसी बात सुनते हुए लोगों को एकान्त लगता है। प्रभु! यह सम्यक् एकान्त की बात है। सम्यग्दर्शन इस प्रकार प्राप्त होता है। जब मैं चिदानन्दरूपी नित्य शुद्ध की खान हूँ। मेरी चीज़ में राग का प्रवेश नहीं। ओहोहो! राग भी मेरी वस्तु से ऊपर तैरता है। आहाहा! हैं अवश्य। रागादि हैं अवश्य, परन्तु ऊपर तैरते हैं; अन्दर में प्रवेश नहीं करते। आहाहा! वह पर्दा होता है न ? पर्दा। (गुजराती में) ओजल कहते हैं न ? रानी। पर्दा हो। पर्दे की ओट में रानी कैसी होंगी, ऐसा लगता है।

एक बार हम वडिया गये थे। जूनागढ़ के पास वडिया गाँव हैं। रामजीभाई थे, आनन्दभाई थे, सब बहुत थे। राजा स्वयं व्याख्यान में आये। दरबार (आये) तो उन्होंने कहा, महाराज! हमारे घर में रानी को दर्शन करना है। लोगों को ऐसा कि रानी कैसी होगी ? ओहोहो! पर्दे में रहती है न ? बाहर नहीं रहती। महाराज! हमारी रसोई ब्राह्मण की रसोई है। निर्दोष आहार (लो)। हमारी रसोई अलग (बनायी) ब्राह्मण की रसोई में पधारो और हमारी रानी को दर्शन दो। तो लोगों को ऐसा कि रानी कैसी होगी ? जहाँ अन्दर गये। ऐसा

मुँह मोटा और खून नहीं.. रानी कैसी होगी मानो ? यह ऐसा नहीं। राग से रहित भगवान पर्दे में विराजता है, वह ऐसा नहीं। आहाहा! समझ में आया ? क्या कहा ?

वह वडिया है जूनागढ़ के पास। वडिया दरबार है, वहाँ हम गये थे, तो लोग तो सब आवे। दरबार भी व्याख्यान में आते थे। और वे दरबार इतने होशियार थे कि दूसरे दरबार राज्य कैसे चलाना, यह सीखने आते थे। वे दरबार ऐसे थे। नाम भूल गये। (संवत्) १९९५ के वर्ष में। १९९५ में राजकोट में चातुर्मास था न ? १९९६ के वर्ष में। १९९६ के वर्ष में वहाँ गये थे। जूनागढ़ दर्शन करने गये थे, फिर 'वलता', वहाँ उतरे थे तो वह राजा ऐसा था कि उसके पास आजू-बाजू के राजकुमार सीखने आते थे। व्याख्यान में सब आये। वे राजकुमार आये थे, वे सब आये थे। १९९६ के वर्ष की बात है। कितने वर्ष हुए ? ३९ वर्ष। जहाँ अन्दर गये तो रानी में कुछ ठिकाना नहीं। अर र! दुनिया को ऐसा कि रानी कैसी होगी ?

यहाँ कहते हैं कि राग से रहित, पर्दे से रहित भगवान अन्दर कैसा है ? वह तो अलौकिक बात है। राग का पर्दा तोड़कर अन्दर में जाना। आहाहा! वह बादशाह, चैतन्य बादशाह के तुझे दर्शन होंगे। आहाहा! ऐसी सम्पदा कहीं नहीं है, ऐसी सम्पदा की खान तू है, प्रभु! आहाहा! उसकी महिमा न आवे और बाहर की महिमा आवे! मिथ्यादृष्टि है। इन दया, दान, व्रत और भक्ति के परिणाम की महिमा आती है, वह मिथ्यादृष्टि है। अपनी चीज़ की महिमा की खबर नहीं और उस परचीज़ की महिमा! आहाहा!

यह यहाँ कहते हैं। **विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** देखो! अत्यन्तरूप से। साधारण नहीं। वह पद ही नहीं। अपना पद ही नहीं, अपना स्वरूप ही नहीं। आहाहा! **(अर्थात्, जहाँ विपदा बिलकुल नहीं है) ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** आहाहा! यह आत्मा भगवान त्रिलोकनाथ राग का पर्दा तोड़कर मैं अन्दर में जाता हूँ तो मुझे मेरा अनुभव होता है। यह चीज़ है, वह सम्यग्दृष्टि है। आहाहा! समझ में आया ? बाकी मान ले कि हम जैन में जन्में, इसलिए सम्यक्त्वी हैं, नवतत्त्व और देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा है, वह कुछ नहीं, भाई! आहाहा!

इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ। कैसा ? आहाहा! कि **नित्य शुद्ध चिदानन्दरूपी सम्पदाओं की उत्कृष्ट खान है... इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ।** आहा! राग को नहीं, राग नहीं। वह तो परपद है। आहाहा! तीसरा श्लोक—५७ है न ?

श्लोक-५७

(वसंततिलका)

यः सर्व-कर्म-विष-भूरुह-सम्भवानि,
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भुङ्क्तेऽधुना सहज-चिन्मय-मात्म-तत्त्वं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति सन्शयः कः।।५७।।

(वीरछन्द)

निज से भिन्न तथा कर्मों के विषवृक्षों के फल को त्याग।
सहज चिदातम का भोक्ता जो, क्या संदेह लहे निर्वाण॥५७॥

श्लोकार्थः—(अशुभ तथा शुभ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर जो जीव, इसी समय सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है, वह जीव अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है—इसमें क्या संशय है?।।५७।।

श्लोक-५७ पर प्रवचन

यः सर्व-कर्म-विष-भूरुह-सम्भवानि,
मुक्त्वा फलानि निजरूपविलक्षणानि।
भुङ्क्तेऽधुना सहज-चिन्मय-मात्म-तत्त्वं,
प्राप्नोति मुक्तिमचिरादिति सन्शयः कः।।५७।।

आहाहा! **(अशुभ तथा शुभ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से...** वे जो जहर के वृक्ष हैं। आहाहा! शुभकर्म और अशुभकर्म जड़, वे जहर के वृक्ष हैं। आहाहा! तीर्थंकर प्रकृति बाँधी हो... समयसार में कहा है, १४८ प्रकृतियाँ जहर का वृक्ष है। अमुक प्रकृति में तीर्थंकर प्रकृति भी आ गयी और आहारक, आंगोपांग... मुनि का आहारकशरीर होता है न? भगवान को प्रश्न पूछने जाए। वे सब जहर के वृक्ष हैं। प्रकृति जहर के वृक्ष हैं। भगवान

आत्मा अमृत का वृक्ष। अमृत का चिन्तामणि महावृक्ष। आहाहा! रागादि भाव की जो प्रकृति है... आहाहा! **सर्व कर्मरूपी...** ऐसा लिया है न? सर्व कर्म में कोई तीर्थंकर प्रकृति गौण रखी है, ऐसा नहीं है। भले तीर्थंकर प्रकृति पड़ी हो, परन्तु वह तो कर्म जड़ है। १४८ प्रकृति है, वह सब जड़ है। आहाहा!

वे **सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से...** जहर के वृक्षों से। **उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण...** मेरे स्वरूप से विलक्षण अर्थात् विपरीत लक्षणवाले। पुण्य और पाप मेरे स्वरूप से विपरीत लक्षणवाले हैं। आहाहा! देखो! यह सम्यग्दर्शन की चीज़! इसे उस सम्यग्दर्शन का अभी भान नहीं और इसे त्याग हो जाए, (ऐसा नहीं होता)। त्याग करो, स्त्री, पुत्र का त्याग किया, यह सब मिथ्यात्व है। पर का त्याग मैंने किया, यह मिथ्यात्वभाव है। पर के ग्रहण-त्याग आत्मा में है ही नहीं, वह तो भिन्न चीज़ है। कभी स्पर्श नहीं किया तो त्याग करने का कहाँ आया? आहाहा! गजब कठिन काम, भाई! दुनिया बाह्य त्याग को देखकर लगे त्यागी है... त्यागी है। धर्म के त्यागी हैं। यह अन्दर आता है। भाई! नियमसार में आता है। नियमसार में आता है, कौने में आता है। स्व-धर्म त्याग, ऐसा मोह। आता है, इस ओर आता है। यह सब कहीं याद रहता है? स्व-धर्म का त्याग, ऐसा मोह। है अवश्य कहीं? २५७? २५७ पृष्ठ न? २१० कलश। देखो! **स्वधर्मत्यागरूप...** है? त्याग किया इसने। क्या त्याग किया? स्वधर्म का त्याग किया। **स्वधर्मत्यागरूप (मोहरूप)...** है? बाह्य के त्याग में तो स्वधर्म का त्याग-मोह है। गजब बात है, बापू! स्वधर्म, है? **स्वधर्मत्यागरूप (मोहरूप) अतिप्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है और जो उस अघसेना की ध्वजा को हर लेता है।** आहाहा! मोह की व्याख्या की है कि स्वधर्म के त्यागरूप मोह। आहाहा! मैं पर का त्याग करूँ, पर को छोड़ूँ, यह तो मोहभाव है। अरे! राग का त्याग करना, वह भी नाममात्र आत्मा में है। समयसार की ३४वीं गाथा में आता है। राग का त्याग भी आत्मा में नाममात्र है। परमार्थ से राग का त्याग भी आत्मा में नहीं है। क्योंकि आत्मा रागरूप हुआ ही नहीं। ऐसे स्वभाव की दृष्टि और अनुभव हुआ तो राग का त्याग उसने किया, वह नाममात्र कथन है। परमार्थ से राग का त्याग भी आत्मा में नहीं है। आहाहा! लोग बाहर के त्याग, स्त्री-पुत्र छोड़े, वस्त्र बदल डाले, एक वस्तु ओढ़े-पहने, वहाँ हो गया त्यागी।

यहाँ ऐसा कहते हैं, देखो! यह पद्मप्रभमलधारिदेव का श्लोक है, हों! मुनिराज का श्लोक है। आहा..! **सदा शुद्ध-शुद्ध ऐसा यह (प्रत्यक्ष) चैतन्यचमत्कारमात्र तत्त्व जगत**

में नित्य जयवन्त है—कि जिसने प्रगट हुए सहज तेजःपुंज द्वारा स्वधर्मत्यागरूप (मोहरूप) अतिप्रबल तिमिरसमूह को दूर किया है... आहाहा! स्वधर्म का त्याग ऐसा जो मोह, उसे दूर किया है। सूक्ष्म बात है, भाई! यह तो अनन्त-अनन्त काल का अन्त लाकर भव का अन्त लाने की बात है। भव का अन्त नहीं हो तो नरक और निगोद मिलेगा, बापू! आहाहा! अरबोंपति मरकर पशु में जायेगा। आहाहा! खिसकोली। खिसकोली को क्या कहते हैं? गिलहरी में जायेगा। ढेढगरोली होता है, उसमें जन्में। आहाहा! बापू! अनन्त बार ऐसे भव किये हैं, भाई! तेरी चीज़ की खबर नहीं और तिर्यंच गति में जाता है। क्यों? गोम्मटसार में लिखा है कि क्यों? (तिर्यंच होता है?) कि इसने स्वरूप से विपरीतता / वक्रता बहुत की है। वक्रता अर्थात् विपरीतता बहुत की है तो विपरीतता के कारण इसका शरीर भी तिर्यंच में आड़ा हो गया। मनुष्य में ऐसे (सीधा शरीर) हुआ तो हाथी, घोड़ा, गिलहरी का आड़ा शरीर है। शरीर आड़ा हो गया। वक्रता बहुत की तो आड़ा शरीर हो गया। आत्मा में तो वक्रता हुई। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! कौन सा अधिकार है? समाधि अधिकार। समाधि अधिकार में यह गाथा है।

यहाँ यह कहा **जो विपदाओं का अत्यन्तरूप से अपद है...** जहाँ विपदा बिल्कुल नहीं। भगवान शुद्ध चिदानन्दमूर्ति में राग की आपदा बिल्कुल नहीं। उसमें विपदा है ही नहीं। विपदा-राग, वह विपदा है, आकुलता है, दुःख है। आहाहा! अन्दर आत्मा में वह बिल्कुल नहीं। आहाहा!

ऐसे इसी पद का मैं अनुभव करता हूँ। अब, **(अशुभ तथा शुभ) सर्व कर्मरूपी विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले,...** आहाहा! शुभ और अशुभ जो कर्म है, वे जहर के वृक्ष से उत्पन्न होनेवाले, **निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर...** विषवृक्ष जो जहर पुण्य-पाप के परमाणु पड़े हैं, उनके कारण से यह लक्ष्मी-पैसा, मकान, करोड़ों आदि मिले, वे विषवृक्ष के फल हैं। जहर के फल हैं। समझ में आया? आहाहा! यह तो सन्त ऐसा कहते हैं; लोगों को बैठे न बैठे (जँचे या न जँचे)।

कोई अरबोंपति हो तो कहते हैं कि वह तो विषवृक्ष के जहर का फल है। कहो, पोपटभाई! पोपटभाई के साले थे न! दो अरब चालीस करोड़। गोवा, गुजर गये हैं। पैसा है अभी। दो लड़के हैं। एक लड़के ने ख्रिस्ती से विवाह किया है। पैसा बहुत, दो अरब चालीस करोड़, ढाई अरब और एक वर्ष में बहुत करोड़ की आमदनी। इनके साले हैं। वे

तो गुजर गये। भाई बैठे हैं न ? इनके साले। वे तो गुजर गये। उनके लड़के हैं। ढाई अरब पैसा (रुपये)। दो सौ पचास करोड़। धूल में क्या है ? भाई !

यह कहते हैं, वे कर्मरूपी जहर के फल हैं। वह निजरूप से विलक्षण हैं। अपने आनन्दस्वरूप भगवान से लक्ष्मी आदि स्त्री आदि, अनुकूल, पुत्र अनुकूल, इज्जत अनुकूल, यह जहर का फल है। आहाहा ! इसकी मिठास छूटे... आहाहा ! तब प्रभु की मिठास आवे। बाहर की मिठास अन्दर से छूटे। बिल्कुल जहर का वृक्ष, जहर फल है। अरबों रुपये हों और दस-बारह लड़के हों। एक-एक लड़के की पाँच-पाँच, दस-दस लाख की आमदनी हो, सब जहर के वृक्ष हैं।

मुमुक्षु : जहर के वृक्ष.. इत्यादि के लिये।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो सबके लिये है। अन्दर है या नहीं ? आहाहा !

विषवृक्षों से उत्पन्न होनेवाले, निजरूप से विलक्षण ऐसे फलों को छोड़कर जो जीव, इसी समय... इसी समय। **समय सहजचैतन्यमय आत्मतत्त्व को भोगता है,...** राग को नहीं भोगता, पर को नहीं भोगता और स्वयं को भोगता है। **वह जीव अल्प काल में मुक्ति प्राप्त करता है—इसमें क्या संशय है ?** अपने आत्मा का अनुभव करता है, वह अल्पकाल में केवलज्ञान प्राप्त करे, इसमें संशय क्या है ?

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)